श्राद्ध

मृतक भोजन पर अन्वेषण

महात्मा ॐ

आनन्दस्वरूपजी.

श्राद्ध

[मृतक भोज पर धार्मिक विवेचन]

क्या मृतक भोजन धार्मिक हैं ?

लेखक—

नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा

श्री आनन्दस्वरूपजी महाराज

प्रकाशक

मरुधर प्रकाशन मन्दिर जोधपुर.

प्रथमावृत्ति	१ जनवरी	मूल्य
१०००	सन् १९३५,	तीन आने

प्रचार के लिये मूल्य लागत मात्र ।

इसका प्रचार ? हो:— सुनिये

इस पुस्तिका को पढ़लेने पर आपको यह भली भाँति विदित होगया होगा कि इसका प्रचार होना कितना आवश्यक है। किन्तु यह तब ही हो सकता है कि जब विद्वान व समाज प्रेमी सज्जन इसके प्रचार कार्य्य में कुछ सहयोग दें, और वह यही कि कमसे कम इसकी ५० प्रतियें खरीद कर लागत मात्र में बेचदें अथवा मुफ्त बांटदें।

यह शुभकार्य हम आपके लिये इस प्रकार सुलभ कर सकते हैं कि हम ५० पुस्तकें लेने पर आपसे केवल ५) रु० अर्थात् लागत मात्र ही मूल्य लेंगे।

इस थोड़े से त्याग से अक्षय पुण्य व समाज सेवा करने से न चूकिये। अनुमान से आधी पुस्तकों की मांग तो पुस्तक के छपने के पहिले ही आचुकी है।

विनीत:—
मन्त्री,
श्री मरुधर प्रकाशन मन्दिर.
जोधपुर

प्रकाशक के दो शब्द

संसार परिवर्तन शील है। प्रत्येक ऋतु समय के अनुसार बदलती है। यह प्राकृतिक नियम चाहे हमें पसन्द हो चाहे न हो अटल है। जो रीति रिवाज कभी धार्मिक समझे जाते थे बदल कर मध्य काल में और के और होगये और आधुनिक काल में वे न पहिले के रहे हैं और न बीच के, और अब समय की गति से और लोगों की प्रगति से ऐसा ज्ञात होता है कि ये भी थोड़े ही दिन के महमान हैं। लोगों में खोज करने की लालसा ने ज़ोर पकड़ लिया है। "ऐसा होता आया है" 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' को मानने वालों की संख्या भी दिन दिन कम हो रही है और सब लोग यह चाहते हैं कि वही सामाजिक या व्यक्तिगत व्यवहार चालू रहना चाहिये जो धार्मिक हो और लाभकारी हो। इस समय हमारे सामाजिक नियम धर्म व सत्य की कसौटी पर कसे जारहे हैं और अन्त में वे ही स्थायी रहेंगे जो खरे निकलेंगे।

ऐसे समय में इसी विषय पर किसी भी उपयोगी पुस्तक अथवा निबन्ध का प्रकाशित होना जनता के लिये विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होगा और इस लिये अति आवश्यक भी है। हमें अत्यन्त हर्ष है कि ऐसे

अवसर पर महात्माजी श्री ॐ की कृपा से हमें ऐसी ही पुस्तिका प्रकाशित करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

इस समय 'मृतक भोजन' की आधुनिक प्रणाली को लेकर कुछ हल चल मची हुई है। कुछ लोगों का विचार है कि यह प्रथा धार्मिक है कुछ का विचार है कि यह अधार्मिक है। नवयुवक इसे केवल वृद्ध देवताओं की 'मीठे से प्रीति' का ही फल मानते हैं पर वृद्ध पुरुष तो इसे परम पावन पूर्ण धार्मिक तथा पितरों के मोक्षका एक मात्र रास्ता मानते हैं। इसी मतभेद को लेकर ॐ ने यह छोटीसी पुस्तिका लिखी है जिसमें 'मृतक-भोजन' पर धार्मिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। हमारी समझ में यह पुस्तक इस मत भेद को मिटाने में बड़ी भारी सहायता करेगी। पाठक यदि कृपा करके इसको ध्यान से पढ़ेंगे तो पता लगेगा कि श्राद्ध का सच्चा स्वरूप व उसकी मर्य्यादा जो इस पुस्तक में बताई गई है पूर्णतया ऋषि प्रणीत है और परलोक गत आत्माओं को कल्याण देने वाली है। यह दूसरी बात है कि कुछ भोजन सम्मेलन के प्रेसीडेन्ट लोग इसका विरोध करें या इसे बुरी भली कहें।

वैसे पकवान से प्रेम किसे नहीं है परन्तु खाना और चीज़ है और धर्म कुछ और। आहार पशु, पक्षी व

अन्यायी पुरुष भी करते हैं, परन्तु धार्मिकता को निभाना यह मनुष्य का परम श्रेष्ठ कर्तव्य है। जिस खाने के आनंद में समाज व राष्ट्र का धर्म, धन, समय आदि का दुरुपयोग हो वह खाना किस काम का ? इस पर पूर्ण विवेचना करके ॐ ने जो श्राद्ध की वैज्ञानिक विवेचना की है वह उपादेय व हमलोगों के लिये विचारणीय है। इसके अतिरिक्त श्राद्ध करने का जो सुगम, धार्मिक व समाज के हित का रास्ता बताया है वह वास्तव में अनुकरणीय है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि हमारे भोजन सम्मेलन के ओनरेब्ल सदस्यगण इस पुस्तिका को ध्यान से पढ़ेंगे; यही नहीं हम तो प्रत्येक बन्धु से यह प्रार्थना करते हैं कि वह समय निकाल कर इस पुस्तक को आदि से अन्त तक अवश्य पढ़े और ऐसी उपयोगी पुस्तक के प्रचार कार्य में पूर्ण सहायता दे। प्रत्येक सुधार प्रेमी को ऐसी पुस्तकों को घर २ में पहुँचाना अपना कर्तव्य समझना चाहिये तभी इस सम्बन्ध में वातावरण सुधारा जा सकेगा। हम भी अपनी ओर से इसके प्रचार में पूर्ण रूप से सहयोग देने के लिये तैय्यार हैं।

निवेदक:—

जोधपुर
ता० १-१ १९३४

मन्त्री
मरुधर प्रकाशन मन्दिर.

विषय-सूचि।

विषय प्रवेश।

ओम् आज कल के धर्म का कुछ ऐसा विकृत स्वरूप हो गया है कि हम यह भी निश्चय नहीं कर सकते कि अमुक कार्य धर्म है या अधर्म। ओम् के अनुभव में हम आज कल के धर्म के लिये उदाहरण देने के अर्थ कोई वस्तु ही नहीं पा सकते हैं फिर भी ओम् ने बहुत जांच परताल करके एक ऐसी वस्तु खोज निकाली है और यदि हम अच्छी तरह से व निरपेक्ष बुद्धि पूर्वक विचारेंगे तो यह उदाहरण की वस्तु बहुत ही ठीक और सत्य प्रतीत होगी। वह वस्तु है—हैजा (कोलेरा)। जैसे हैजे में दो ही इन्द्रियां काम दिया करती हैं वैसे ही आजकल के धर्म में दो ही इन्द्रियां काम दिया करती हैं। वे इन्द्रियां हैं मुख और गुदा। आजकल जिस धर्म में मुख ने खाकर गुदा ने विष्ठा बना कर नहीं निकाला वह धर्म ही क्या! हैजे और धर्ममें फर्क इतना ही है कि हैजे में दोनों इन्द्रियां

त्याग करती हैं और इसमें एक त्यागती है और एक ग्रहण करती है। हैजा सिर्फ प्राणों को ही लेता है परन्तु यह आधुनिक धर्म धन, धर्म, बुद्धि, समय आदि मात्र वस्तुओं को ही खा जाया करता है। चाहे तो इस धर्म को धर्म कहो या पूर्वोक्त वस्तुओं की मृत्यु कहो--अथवा एक ढँकोसला भी कह दो तो कोई अत्योक्ति नहीं होगी। इस धर्म रूप हैजे के ढ़ँकोसले ने न जाने कितने घरों को बरबाद कर दिया है।

इसके उदाहरण में ॐ एक आंखों देखी घटना का वर्णन करता है, आशा है पाठक इस घटना को पढ़कर नित्य प्रति होने वाली हजारों घटनाओं को देखने की चेष्टा करेंगे। घटना यह है—एक अच्छे घराने का उच्च जाति उत्पन्न ब्राह्मण था। जिसके दोसो डेढ़सो बीगा जमीन थी, समाज में इज्जत थी व घर में खाने पीने का प्रबन्ध था। इस समय तक उसके पूज्य पिता भी जीवित थे। जब उसके एक पुत्र का विवाह हुआ तो यह बड़े ही धूम धाम से किया गया। इस विवाह के कुछ दिन बाद गृहपति का स्वर्गवास हो गया। इस मौके पर उनके इकलोते पुत्र ने एक बहुत ही बड़ा पितृयज्ञ किया। निज के विवाह में पिताजी बहुत कुछ अर्थ का

स्वाहा कर ही चुके थे अब पितृयज्ञ में भी उसकी आन्तरिक आर्थिक शक्ति का बहुत कुछ ह्रास हुआ। तत्पश्चात उसने अपनी एक बेटी का विवाह भी बहुत शान व शोकत से किया। इसमें तो उसकी रही सही समस्त शक्ति पूर्ण रूप से नष्ट हो गई। यहां तक कि उसके रोजाना खर्च में भी अड़चन होनेलगी।

दैवयोग से थोड़े ही समय बाद उसके पूज्य श्री माताजी का भी स्वर्गवास हो गया। इस समय उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उसने अपने मित्रों की सलाह ली और अपना गुप्त रहस्य भी उन्हें कह सुनाया कि घर तो मैंने पुत्री के विवाह में ही गिरवे रख दिया है अब इस समय मातृयज्ञ करने के लिये मेरे पास कुछ नहीं है, ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये ?

इन मित्रों ने यही सलाह दी कि तुम्हारी पूज्या मातृ श्री को बारम्बार थोड़े ही मरना है। इस अवसर को हाथ से खोना अपनी कीर्ति और मातृ भक्ति को तिलांजली देना है। देखो भाई तुमने जो तुम्हारे पिता की मृत्यु पर जो बड़ा भारी पितृयज्ञ किया वह भी इसके नीचे छिप जायगा और सब लोग तुम्हारी अपकीर्ति करेंगे। संसार

में अपकीर्ति बहुत बुरी है। इससे तो मर जाना अच्छा है १ अपने बडेरे और बातों में भले ही चूके हों मगर ओसर मोसर में तो कभी नहीं चूकते थे। अब तुम ही सोचलो कि तुम्हें यज्ञ करके जीना अच्छा है या अपकीर्ति लेकर मरना।

बस इन शत्रु मित्रों का असर उस पर जादू से भी बढ़कर हुआ और उसने अपनी जमीन (जीवनोपार्जन का एक मात्र उपाय) गिरवे रखकर मातृपूजा को पूर्ण किया। अब उसके पास में सिवाय इज्जत के कुछ भी नहीं रह गया। इस प्रकार कार्य्य करने के पश्चात् मनुष्य कि जो दशा होती है वही उसकी भी हुई। मीठा साफ हो जाने

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादति रिच्यते।
भ० गी० अ० २ श्लो० ३४.

निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।
भ० गी० अ० २ श्लो० ३६

१ अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिये मरण से भी अधिक बुरी होती है।

तेरी सामर्थ को निन्दा करेंगे फिर उससे अधिक दुःख क्या होगा।

के बाद जिस प्रकार मक्खियें भागजाया करती हैं वैसे ही हमारे नायक की आर्थिक दशा बिगड़ने पर उसके लोलुप मित्र भी रफ्फू चक्कर हुऐ। यही नहीं थोड़े ही दिनों के बाद चहुँ ओर सब, और विशेष कर उसके मित्र गण ही, उसकी निन्दा करने लगे। देखोजी कैसा नालायक है, जिसने घर और जमींदारी दोनों ही बेच दी। बाप दादा की इज्जत का भी खयाल नहीं किया-करे भी कैसे चटोकड़ा जो ठहरा!

बिना डाढ़ व दांतों को तकलीफ दिये जिन्होंने सीरा गलक गलक नीचे उतारा था वे ही उसकी निन्दा करने में अगुआ बने और सदा उससे ऐसे शङ्कित रहने लगे कि कहीं वह उनसे सहायता के लिये याचना न कर बैठे चाहे उससे उन्होंने सैकड़ों वार सहायता पाई हो। पाठक गण इस पर आश्चय न करें। मिष्टान्न प्रेमियों का सदा से यही नियम रहा है कि 'जहां पर देखे भरी परात वहीं पर नाचे सारी रात'। स्वार्थी मित्रों का सदा यही हाल रहता है।

अन्त में 'बुभुक्षितो नरो किं न करोति पापं' के नियमानुसार जब और कोई उपाय पेट भराई का नजर न आया तो वह ब्राह्मण देवता महान् पाप पूर्ण औरतों के व्यापार में जा फँसा। अपने प्रान्त की औरतों को दूसरे

प्रान्तों में और उन प्रान्तों की औरतों को अपने प्रान्त में बेच कर पेट भराई करने लगा।

परन्तु ऐसा पाप भरा व्योपार कितने दिन चल सकता था यह आप ही (पाठक ही) सोच सकते हैं। एक दिन इस पाप का भण्डा फोड़ हुआ और वह अपने तीन दिन के भूखे बच्चों को छोड़ कर भाग छूटा। अब तक किसी को पता नहीं कि वह जिन्दा है अथवा मर गया। प्रिय पाठको, पीछे उसके बाल बच्चों की जो कारुणिक दुर्दशा हुई वह अत्यन्त ही हृदय विदारक है। जिस अपनी सुकुमारी कन्या का विवाह उसने बड़े ही धूमधाम से किया था वह उसके सामने ही बाल विधवा हो चुकी थी। जिस समय वह उस कन्या को चार भाइयों सहित छोड़ कर भागा था उस वक्त उसके घर में एकटंक भी खानेका अन्न न था। भूख से तड़फते हुओं की कोई बात पूछने वाला नहीं था और वे खून का घूंट पीकर अपने घराणे की रक्षा कर रहे थे। तीसरे रोज एक भले आदमी गांव के जाट को उनकी क्षुधातुरता का पता लगा तो वह गांव में से कुछ आटा इकट्ठा करके उनके घर ले गया परन्तु उस स्वाभिमानिनि लड़की ने रोकर इसका विरोध करते हुए कहा " क्या आप आज

हमें भिखमंगे समझ रहे हैं ? नहीं हम भूखे नहीं है हमारे पिताजी गांव गये हुए हैं, एक दो रोज में आने ही वाले हैं चाचाजी आपको किसने कहा कि हम भूखे हैं"। जाट ने आंसु भर कर कहा, "नहीं बेटी मैं अपने घर से लाया हूं, मांग कर नहीं लाया हूं। क्या मेरा और तेरा घर दो समझती हो—नहीं हम तुम्हारे यजमान हैं, तुम हमारे पुरोहित हो, इसको लेने में कुछ आपत्ति मत करो। देखो बेटी मैं तुम्हारे बाबाजी से बहुत सी चीजें ले जाया करता था। मैं सत्य कहता हूं हमारा तुम्हारा घर एक ही है।"

ओम् प्रिय पाठको मुझको अगली कथा भी इस काले मुँह वाली लेखनी से लिखनी पड़ती है। हृदय कांपता है, लेखनी इनकार करती है कि मुझ से ऐसी भयानक कथा मत लिखवा परन्तु मैं कहता हूं कि धर्म का रूप बतलाने के लिये थोड़े से अक्षर और लिख दे। तू काले मुख वाली है तुझे काले मुँह वालों की कथा लिखने में सङ्कोच नहीं करना चाहिये। तू मेरे सफेद हृदय का साहस तो देख। चल आगे बढ़ और लिखदे वे ही शब्द जो संसार कि ऋद्धियों को हिला देंगे, जिवित मनुष्यों की आंखों से आंसु बहा देंगे, व बतादेंगे कि यह धर्म नहीं सच-

मुच ही महा पाप है। प्रिय पाठकों हृदय को मजबूत करके इन अक्षरों को पढ़ना, मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं कि कहीं तुम्हारा हार्टफेल (heartfail) न हो जाय! सावधान!!

थोड़े ही दिन के पश्चात् हमारे चरित्रनायक का एक मित्र आया जिसको हमारे चरित्रनायक की सुकुमारी चाचा कहा करती थी, और वे उसको बेटी कहा करते थे। दो तीन दिन रहने के पश्चात् न जाने इस दुष्ट चाचे ने लड़की पर क्या जादू किया, रात को उसे लेकर रफू चक्कर हो गया। प्रातःकाल होते ही सारे विश्व ने तो सूर्य्य का मुँह देखा था, परन्तु इस सुकुमारी के चारों भाइयों ने तो चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार देखा। वह इस महान अन्धकार को देखकर रो रहे थे। उनके लिये इस संसार में कोई भी रक्षक नहीं दिख रहा था। वे तीन चार रोज तक गांव में बुरी तरह से हाय बहिन! हाय बहिन! चिल्लाते हुए फिरते रहे, फिर कहां गये और उनका क्या हुआ कुछ पता नहीं। आज तक न जाने वे मर गये न जाने वे जीते हैं। कहते हैं कि वे मुसलमान हो गये कोई कहता है कि वे ईसाई हो गये; पर असली बात को या तो वह हत्यारा ईश्वर जाने जिसके नाम पर ऐसे सर्व-

विघातक धर्म किये जाते हैं, या वे पापी मित्र आवें जिन्होंने पीठ ठोंक कर हमारे चरित्रनायक का सर्वस्व नाश किया। यह है आज कल के धर्म की करतूत और धर्म का स्वरूप !

ऐसे धर्म को या तो आप पूर्वोक्त हैजा कह सक्ते हैं या ढकोसला कह सक्ते हैं कि जिसमें सत्यवक्ता और सत्यदृष्टाओं के लिये तो सच्चे धर्म का एक भी परिमाणु नहीं है। आप ऐसे धर्म के किसी भी पहलू को देख लीजिये, उन सब में उपरोक्त दो इन्द्रियों का ही प्रधानत्व मिलेगा। आज कल यही एक धर्म का तत्व रह गया है। इसी बात को स्पष्ट करने के हेतु ओम् आज मृतक आत्माओं के साथ में होने वाले धर्म का स्वरूप ही दिखावेगा और आशा है पाठक इसे ध्यान से पढ़ कर इसको सत्य की कसौटी पर कसेंगे। यदि धर्म के मात्र पहलुओं पर लिखने की चेष्टा की जाय तो शायद वह आकाश दोहन के सदृश ही निष्फल होगी। इसी अभिप्राय से यहां एक ही विषय को लिया जाता है जिस पर लाखों नहीं बल्कि करोड़ों-करोड़ों नहीं अपितु अरबों का ही

अर्थ स्वाहा किया जा रहा है। वह धर्म पर भी नहीं अपितु नाक पर ! यदि मनुष्यों के शायद नाक नहीं होता तो यह धन मनुष्यों के सदुपयोग में लगाया जा सकता था। अब पिछले नामों के साथ में इस धर्म को नकूधर्म भी कह सकते हैं क्योंकि यह नाक काट के ही नाक की और धर्म की रक्षा करता है। इसी लक्ष्य को लेकर ओम् एक ही विषय का समालोचना पूर्वक अनेक प्रकार के सिधान्तों से सत्य स्वरूप दिखलाने की चेष्टा करेगा।

श्राद्ध क्या है और क्यों किया जाता है

धर्म शास्त्रः—

ॐ हमारे शास्त्रों में तीन प्रकार के मनुष्यों के क्रियाकर्म श्राद्धादि करने का विधान नहीं है। प्रथम सन्यासी, दूसरा नैष्ठिक ब्रह्मचारी, तीसरी अक्षतयोनि नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी विधवा। क्योंकि ये तीनों अपनी संसारिक वासनाओं को अपने आचार, विचार, सदाचार त्याग, वैराग्य रूप तप से प्रज्वलित ज्ञानाग्नि में जला हो फूंक कर ब्रह्म में जा मिला करते हैं। अतः उनका कोई भी भौतिक अङ्ग न रहने से इन्हें भौतिक पदार्थों से तृप्त करना शास्त्रों के मत से इनका अपमान करना माना है। इन तीनों के अतिरिक्त सब पुरुषों के क्रियाकर्म करने का शास्त्रों में विधान आया है। इससे सिद्ध होता है कि श्राद्ध आदि करने का ध्येय मृतक आत्मा को संसारी वासनाओं से मुक्त करना ही है। इसी अर्थ को पुत्र शब्द भी सिद्ध करता है, जैसे कि—" पुन्नाम् नरकात् त्रायते इति पुत्रः " अर्थात् जो पुन्नाम् नर्क से पार करता है वह ही पुत्र

है। अतः श्राद्ध का ध्येय मृतक आत्मा को मुक्ति धाम में पहुँचाना है। ओम् के अनुभव और शास्त्र विधान से जो इस ध्येय को भूलकर श्राद्ध करते हैं वह अपना धन और समय का नाश करके शास्त्र विधि का विधान करते हुए भी अपनी पूज्यमृतक आत्मा को भी धोखा देते हैं। इस प्रकार के श्राद्ध से कर्त्ता, भोक्ता, मृतक आत्मादि तीनों का ही पतन होता है इसमें संशय नहीं। जिस समय हम अपनी मृतक आत्मा का श्राद्ध ब्रह्म कपाली पर कर देंवे, उसके पश्चात् श्राद्धादि करने का निषेध है। ब्रह्म कपाली का अर्थ भी संसार वासना रहित ब्राह्मीस्थिति, या योग कथित समाधिस्थ पुरुषों का कपाली मस्तक है, जिसमें श्रद्धा का श्राद्ध करने से ही मृतक आत्मा का श्राद्ध हुआ करता है। अतः इस श्राद्ध के लिये श्रद्धा ही प्रधान है इसलिये शास्त्रों में श्राद्ध श्रद्धा से बना हुआ ही कहा गया है अस्तु, दुर्वासनाओं से छुड़ा देना ही सच्चा श्राद्ध है और इसीलिये श्राद्ध किया भी जाता है। अतः जो ब्राह्मण मुक्ति रूप श्राद्ध को पूरा करा सके और जो कर्त्ता इसको पूरा कर सके वही ब्राह्मण व कर्त्ता मृतक आत्मा को पार करके आप तर जाया करते हैं जैसे कि नाविक दूसरों को

पार उतार कर आप भी पार चले जाया करते हैं। कभी तो मनुजी कहते है ÷ कि जो कर्त्ता मूर्ख ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराया करता है वह मर कर लोहे के कांटे और फोलाद के गोले खाया करता है। श्राद्ध के करने वालो! सावधान! कभी बनिये के साथ हम भी डूब न जायँ क्योंकि एक ऐसी भी कहावत है कि—आप गलन्दे बानिये साथे गालिया जाट—कभी पितरों को उबारते हुए हम ही नहीं डूब जावें। सावधान!!

विज्ञानः—

ओम् सब विज्ञ पुरुष जानते हैं कि पितरों के सूक्ष्म शरीर ही हुआ करता है जिसमें स्थूल इन्द्रियें भी नहीं होती हैं। इसी कारण से पितरों में स्थूल पदार्थों के भोगने

÷ *यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्य कव्येष्वमन्त्रवित्।*
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्त शूलर्ष्ट्ययोगुडान्॥ ३३॥

(मनु० अ० ३)

वेद का न जानने वाला ब्राह्मण हव्य कव्यों में जितने ग्रासों को खाता है उतने ही जलते हुए शूलों, ऋष्टि नाम शस्त्रों को और लोह के पिण्डों को श्राद्ध करने वाला मरके यम लोक में खाता है।

की शक्ति का भी आभाव ही होता है। उनके सूक्ष्म शरीरों में पदार्थों को वैसे ही सूक्ष्म बना कर भेजा जाया करता था जैसे आज कल शब्द को सूक्ष्म बना कर (Radio) द्वारा भेजा जा रहा है। सूक्ष्म वस्तु में स्थूल पदार्थ वैसे ही नहीं समा सकता है जैसे सूई के छिद्र में एक बड़ा पत्थर। अतएव हम श्राद्धयज्ञ कर्त्ताओं का कर्त्तव्य है कि हम अपने पूर्वजों के उस विज्ञान को सीखें जिससे कि हम अपने पूर्वजों को संसार की वासना से छुड़ा कर ब्रह्म कपाली (ब्रह्म स्थिती) में पहुँचा सकें जिसके लिये हमारे पूर्वजों ने श्राद्ध यज्ञ का निर्माण किया था।

उस समय के श्राद्ध में, जैसे विना तार के तार (Wireless) के लिये प्रवाहक और ग्राहक पेटियें ही होती हैं, वैसे ही कर्त्ता और भोक्ता रूप दो पेटियें ही होती थीं। अन्य किसी ब्राह्मणादि की आवश्यकता ही नहीं होती थी। इसका स्पष्टी करण ऐसे किया जा सकता है कि सूक्ष्म शरीर की पेटी में श्रद्धा के पोवर (Power) को एकाग्र मन की दूर से भी दूर जाने वाली ज्योतियों की भी महाज्योति की गति से पितरों के सूक्ष्म शरीर में स्वाहाः स्वधा रूप तृप्ति कर कल्याणामृत को पहुँचाया जाया करता था। इस श्रद्धा के पोवर से पितरों को वासना

मुक्त करने के कारण ही इस क्रिया का नाम श्राद्ध पड़ा है। जो श्राद्ध इस श्रद्धा के पोवर से रहित है वह श्राद्ध न तो श्राद्ध ही है और न उससे हमारे पितरों की ही तृप्ति (मुक्ति) होती है। अब शायद पाठकों को यह शङ्का हो कि सचमुच ही श्राद्ध का अर्थ पितरों को श्रद्धा का अमृत पिला कर उन्हें संसार की वासना के छुड़ा कर उन्हें ब्रह्म कपाली (ब्रह्मां मुक्ति) में भेजना है तो फिर यह आज कल का विकृत श्राद्ध कहां से आ गया जिसमें स्व-भाविक श्रद्धा और एकाग्रता भी चली जाया करती है।

आप जानते ही हैं कि जिस समय Radio (बिना तार का तार) का यन्त्र बिगड़ जाया करता है उस समय मनुष्य तार से ही अपने भाव भेजने का यत्न किया करते हैं। पूर्वोक्त श्राद्ध तो Radio की सदृश है जिसके बिगड़ जाने पर ही द्वितीय श्राद्ध प्रणालि की रचना हुई और यह वर्तमान श्राद्ध प्रणाली तो उस समय के तार द्वारा समाचार भेजने की प्रणाली के अनुसार जो दूसरे नम्बर की प्रणाली थी उसका भी विकृत स्वरूप है। अतः आधुनिक प्रणाली को हम श्राद्ध की प्रणाली किसी भी प्रकार नहीं कह सक्ते। जैसे तार के लिये एक पोवर हाऊस (Power house) और तीन तारों की आवश्यकता होती है वैसे ही उस समय

श्राद्ध के विधाताओं ने भी पितरों के छुटकारे के लिये (जब कर्ता का पोवर कम हो गया होगा) श्राद्ध कर्ता-रूप पोवर हाऊस की गति और विधी की पूर्ति के लिये उसकी शक्ति एवं गति को तीव्र बनाने के लिये ही तीन तार रूप ३ ब्राह्मणों को उसके साथ में जोड़ दिया था जिन की सहायता से श्राद्धकर्ता अपने पितरों के पास अपनी कल्याणप्रद श्रद्धाञ्जलि पहुँचाया करता था। परन्तु, याद रहे जैसे तार घर से अपने भाव भेजने के लिये अच्छे पोवर हाऊस और मंजे हुए स्वच्छ जङ्ग रहित तारों की तथा विज्ञ तार बाबू की आवश्यकता हुआ करती है वैसे ही श्राद्ध यज्ञ में भी सदाचारी कर्त्ता और सदाचारी विद्वान् श्राद्धयज्ञ के ज्ञाता ब्राह्मणों की आवश्यकता हैं। अन्यथा जैसे बिजली के तत्व से अनभिज्ञ पुरुष किसी बिजली के कन्टेक्ट (Contact) से खींचे हुए पुरुष को छुड़ाता हुआ आप ही साथ में खिंचकर मर जाया करता है वैसे ही आप और ब्राह्मण भी पितरों के साथ खिंच कर मृत्यु को प्राप्त होंगे, तभी तो हमारे शास्त्रों में कहा है कि श्राद्ध में पूर्ण विद्वान् वेद वेदान्त के तत्व को जानने वाले ब्राह्मण ही जिमाने चाहिये। क्योंकि, वह श्राद्ध के तत्व को जानने वाले ब्राह्मण, पितरों को वैसे ही छुड़ा देंगे जैसे बिजली के तत्व का ज्ञाता बिजली और खिंचने वाले के

बीच में लकड़ी डालकर उसे बचा दिया करता है। अन्यथा, यह विधिहीन यज्ञ और ये मूर्ख भोजन भट्ट जीम जिम्मकड़ ब्राह्मण अपना नाश करके आपके पूज्य पितरों का भी पतन कर देंगे।

श्रोम् श्राद्ध विधान में दो तीन बातें तो ऐसी मारके की आई हैं जिनसे पूर्वोक्त श्राद्ध के विद्युत (बिजली) प्रवाह का स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से ही हो जाता है। प्रथम बात तो यह है कि श्राद्ध को बिलकुल मध्याह्न में ही करना चाहिये जिसका तत्व तो विद्युत प्रवाह के ज्ञाता ही जान सकते हैं, क्योंकि उस समय प्राकृतिक सूर्य की विद्युत (बिजली) की गति सीधी और पूर्ण मात्रा में पृथ्वी पर पड़ा करती है जो बाहर के "श्राद्धतत्व को" क्षण भर में ही पितरों के पास पहुँचा सकती है। दूसरी बात पितरों के ऊष्मपा नाम की है जिसका अर्थ ही विद्युत के प्रकाश का खाना है। तीसरी बात पितरों के आवाहन में पितरों का नाम अग्निष्वात्ता आया है जिससे उनका ज्ञानाग्नि से लुप्त (मुक्त) होना ही सिद्ध होता है। सिद्धान्त से हमारा आज का श्राद्ध इस श्रद्धा की बिजली से बिल्कुल ही विपरीत और खाली है। ओम् के अनुभव में तो श्राद्ध में काममें आने वाली अन्य

सामग्री भी इसी विज्ञान की पोषक है। जैसे की गोबर से लीपना, मृगछाला का बिछाना, तांबे के पात्रों का लेना, जल की समस्त क्रियाएँ, कुशादर्भ (डाब), तिलजवादि ये सब बिजली का बढ़ाने वाली वस्तुएँ हैं। हमारे तन्त्र ग्रन्थों में अनेकों प्रकार की बिजलियें आई हैं जैसे चैलजा (मृगछाला से होने वाली) तड़ागा, हृदजा, इत्यादि। (विस्तार भय से केवल संकेत ही किया गया है)।

लोकोपवाद का झूठा भ्रमः—

कई मनुष्य कहते हैं कि यदि कोई कार्य आज कल के रीति रिवाज के अनुसार श्राद्ध की प्रचलित प्रणाली के खिलाफ किया जाय तो लोकोपवाद का भय रहता है और इसी लिये सब लोग जैसा होता आया है और जैसा सब करते हैं बस उसी के अनुसार कार्य करते हैं; नई बात कोई भी करना नहीं चाहता। हम कहते हैं कि ऐसे हानिप्रद कार्य के लिये लोकोपवाद खड़ा करना ही पाप है। जिसमें चारों तरफ हानि ही हानि हो, जो इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ने वाला हो, उसके लिये लोकोपवाद क्यों? लोकोपवाद का वास्तविक सिद्धान्त तो यह है कि समाज का यह कर्त्तव्य है कि **यदि कोई भी स्त्री व पुरुष**

धर्मशास्त्र के विरुद्ध कार्य करे तो उसके प्रति सच्चे दिल से लोकोपवाद खड़ा करना चाहिये ताकि समाज में अहित कर कार्य करने का भविष्य में कोई साहस न करे। यह नहीं कि लोकोपवाद समाज को पतन की ओर ही खींच कर ले जाय। ऐसे लोकोपवाद को तो अज्ञानता व मूर्खता ही कहा जा सकता है।

लोकोपवाद और धर्म शास्त्र:—

इसी लोकोपवाद की दुहाई देकर लोग धर्मशास्त्र के वाक्यों तक को ताक में रख देते हैं और कहते हैं कि अमुक शास्त्र के वाक्य से लोकोपवाद खड़ा होता है अतः हम इस वाक्य को नहीं मान सकते हैं। परन्तु वे उस समय इस बात को बिल्कुल ही भूल जाते हैं कि स्मृति से भी श्रुति बलवती मानी जाती है। इसमें सब एक मत हैं। इसका प्रमाण भी प्रत्यक्ष मिलता है कि जब कभी जनता में लोकोपवाद खड़ा हो जाता है और वह किसी तरह से हल नहीं होता है, तब उसको धर्म शास्त्रके शासन में पेश किया जाता है और इसके सम्बन्ध में धर्मशास्त्र जो आज्ञा देते हैं वही सबको माननीय होती है। यदि धर्मशास्त्रों से

लोकोपवाद ही बलवान है तो फिर धर्म शास्त्रों की आवश्वयकता ही कैसी ?

पर वास्तव में बात तो यह है कि आज कल की जनता और विशेष कर हिन्दू समाज तो अपने ध्येय से इतना नीचा गिर गया है कि उसमें भले और बुरे की पहचान करने की ताकत ही नहीं रह गई है। अपने स्वार्थ की सिद्धि के अर्थ अथवा अपने वशकी बात नहीं होने पर 'बाप दादे ऐसा करते आये हैं' इसी को सब धर्म शास्त्रों का दादा समझ कहीं लोकोपवाद को ऊँचा, कहीं पुराण को और कहीं मनुस्मृति को ऊँचा नीचा बता कर सब भयङ्कर पतन की ओर दौड़े जा रहे हैं।

सत्य बात तो यह है कि अनर्थक लोकोपवाद का दमन तो धमशास्त्रों से ही होता है। आजकल भी हर एक लोकोपवाद के लिये धर्मशास्त्र की दुहाई दी जाती है। अतः धर्म शास्त्र के आगे लोकोपवाद की कोई कीमत नहीं। लोकोपवाद को आगे लाना तो लोगों की अपनी कमजोरी को छिपाने के लिये पैंतरे बदली है।
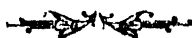
धर्मशास्त्रानुसार मृतक भोजन करने वालों के पितरों की गति।

आजकल जैसा कि ऊपर बताया गया है लोगों को कुछ मीठे से अधिक प्रेम है और मृतक भोजन तो वे लोग आनन्द के साथ जीमते है। यह हिन्दू जाति के पतन की चरम सीमा है। धर्म शास्त्र एक स्वर से यह आज्ञा देता है कि मृतक भोजन से मनुष्य का व उसके पितरों का महा भयङ्कर पतन होता है। जिस भोजन को वे लोग आनन्ददायक व तृप्ति कर समझ उसकी बुराई करने वालों का शिर फोड़ने को तैय्यार होते है उनके सम्बन्ध में धर्म शास्त्र क्या दुहाई देते हैं जरा ध्यान से सुनिये।

मृतात्मा के नाम भोजन करने वालों के पित्रों की गति।

प्रिय पाठको सूतक और मृतक का, अन्न खाने का शास्त्रों में जगह २ पर निषेध किया गया है जैसे मनुचार २१७ में कहा है कि— 'प्रेतान्नमतुष्टी कर्म" । कहा है कि

प्रेत का अन्न अतुष्टीकर होने से सदैव त्याज्य है। ऐसे पतित अन्नों के खाने से यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। ऐसे अन्नके भोक्ताओं के पितर भी नरक में जाते हैं। तथा वे स्वयं भी नाना प्रकार की भृष्ट योनियों में जन्म लेकर नरक में पड़ा करते हैं जैसे—

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ।
पतन्ति पितरस्तस्य ये भुंक्ते नापदि द्विजाः ॥

अत्रि ३०३, ३०४ ॥

जो ब्राह्मण आपत्ति काल विना नौ (प्रथम से एकादशे तक—जैसे पांच से नवें एकादशे तक—नव श्राद्ध होते हैं। नव मिस्ततः-एकादशे से वर्ष पर्यन्त होता है। इनके प्रयाश्चित बड़े २ हैं—प्रायश्चित में देखो) श्राद्ध में, मासिक में, त्रैपाक्षकी में षाण मासिक में तथा वार्षिक में भोजन करता है, उसके पितर नरक में पड़ कर नाना तरह की यातनायें भोगते हैं। इस पर सब स्मृति का एक मत है। केवल अन्तर इतना ही है कि कोई गरम है तो कोई नरम। प्रिय पाठको यह नरक कुण्ड की यात्रा आप के पूज्य पितरों को आपकी जिव्हा और पेट देव के कारण ही करनी पड़ती है। क्या पुत्र जन्म देने का पुण्य पितरों को नरक ही मिला करता है? क्या इसी धाम की प्राप्ति

के अर्थ आपके माता पिताओं ने सैकड़ों दुख झेल कर आपको इतना बड़ा किया ? क्या आप इस पाव डेढ़-पाव मीठे अन्न के बदले में पूज्य पितरों का कुछ भी ध्यान नहीं करते ! वाहरे पूण्याकृति भूत ! तुझे धन्य है ! तेरे धर्म को धन्य है ! जिसके आवेश में आकर अपने जन्म दाता देव तुल्य पितर को भी हम नरक की मेहमानी करा रहे हैं। वह भी आँखों पर पट्टी बांध कर। इससे अधिक गरुड़ पुराण की प्रेत-मंजरी में आप देख सकते हैं।

अध्याय ३० में लिखा है कि मृतक आत्मा के श्राद्ध जीमने वाले और जिमाने वाले दोनों के पितर रौरव नरक में जाते हैं।

श्राद्ध का शेष खाने वालों के लिये:—

प्रिय पाठको पितरों को तो जाने दीजिये, कुछ अपनी भी सुध लीजिये, आपको भी तो मृतक आत्मा के शेष अन्न खाने से कुछ कम प्रसादी नहीं मिलती है जैसे—
श्राद्धन्नावशिष्ट भोक्तार स्तेवैनिरयगामिनः धर्म सि० ६५६ प्र॥

जो श्राद्ध का शेष अन्न खाते हैं वे पुरुष नरकगामी होते हैं। सन्यासी, ब्रह्मचारी, विधवा तो इस अन्न

को सदैव के लिये त्याग देवे। जब श्राद्ध के अन्न खाने से हमारे पूज्य पितरों को नरक मिलता है और उसके शेष खाने वालों को भी नरकगामी होना पड़ता है तो फिर न जाने हम इस पावभर मीठे अन्न को भी क्यों और कैसे नहीं त्याग सकते हैं? अस्तु पितर भी नरक भोगें, शेष भोक्ता भी नरक में पड़ें इसको भी जाने दीजिये ब्राह्मणों का तो पालन होता है इस पर भी सुन लीजिये धर्मशास्त्र क्या कहता है।

श्राद्ध के भोक्ता भोजन भट्टों के लिये।

प्रिय पाठको, आप ऊपर लोकोपवाद भी पढ़ चुके हो कि इस पुण्याकृत भूत ने इस लोक में क्या भलाई की है। जो पुण्य पूज्य पितरों को और शेष भोक्ताओं को मिला है वह भी आप देख चुके हो। अब आप ब्राह्मणों की गति भी देख लीजिये।

॥ पारासरमुनि अ० १२, श्लो० ३४ ३५, ॥

मृतका शौच पुष्टांगं, द्विजं शूद्रान्नभोजिनम्।
अहं तं नाभिजानामि कां, योनिंच गमिष्यति॥
गृद्धे द्वादश जन्मानि, दशजन्मानि सूकरे।
श्वयोनौ सप्तजन्मानि, इत्येवं मनुरब्रवीत्॥

पारासरजी कहते हैं कि मृतक के अशौच और जन्म के असौच में और शूद्र का अन्न खाकर जो हृष्ट पुष्ट होते है, मैं नहीं जानता हूं कि वे किस २ योनि में जायेंगे। परन्तु मैं यहां वही निर्णय पूर्वक कहता हूं जो मनु भगवान ने कहा है। वह पुरुष १२ जन्म तक गृध पक्षी के, दस जन्म सूअर के व सात जन्म कुत्ते के पाता है। प्रिय पाठकों आप अब पारासर की सलाह को समझ ही गये हैं कि वह मनु के मत को मान कर भी तृप्त नहीं हुए। वे तो कहते हैं कि चाहे मनु की जन्म श्रेणी ठीक ही क्युं न हो परन्तु मुझे इतने ही पर विश्वास नहीं है। वह कुछ इससे भी आगे पतन देख रहे हैं, इसका पता उनके कौन कौन शब्द से ही लग जाता है। धर्म सिन्धु अ० ३, पृष्ठ ६००

सपिण्डी करणादुर्ध्वं, यावदब्धं त्रयं भवेत।
तावदेवन्नं भोक्तव्यं, तदीये श्राद्ध मात्रके॥
प्रथमाब्धे अस्ति भोजि, द्वीतीयं मांस भक्षका।
तृतीये रक्त भोजिस्या, शुधम् श्राद्ध चतुर्थकं॥

सपिण्डी की क्रिया के पश्चात् तीन वर्ष तक प्रथम वर्ष में मृतक आत्मा के नाम जीमने वाला ब्राह्मण (अस्थी) हाड़ों का भोजन करता है, दूसरे वर्ष मांस तथा तीसरे वर्ष में रक्त का भोक्ता होता है इत्यादि अन्य भी कितने

ही भयानक वाक्य आये हैं जिनमें कुत्ते के विष्ठा को भी खाने तक का शब्द प्रयोग किया है। ऐसे ही भयानक शब्द पूज्य पितरों के लिये भी दिये हैं, जिनको लिखते हुए हृदय कांपता है, लेखनी इनकार करती है। गरुड़ पुराण की प्रेत मंजरी में बड़े २ मधुर शब्द आये है। जिस भोजन को ब्राह्मण करते हैं उस पर मृतक आत्मा लारें (लें) टपकाता रहता है, और ब्राह्मण देव उसे चट करते रहते हैं। चाहे स्वयं देख लीजिये नहीं तो किसी मृतक आत्मा के नाम की जाकर प्रेत मंजरी की कथा सुन लीजिये फिर आपके मुख में उस भोजन का रस अवश्य टपकने लगेगा. जिससे आपके जन्म जन्मान्तर के पाप छूः मन्त्र हो जावेंगे।

हां तो प्रिय पाठकों यदि इतने पर भी आप इस पाव भर मीठे को नहीं त्याग सकते तो फिर आप अपने पतन की भी अवधी कहीं मत समझिये। न जाने आप और आपके पूज्य पितर किस अधोगति के गर्त में पड़े सड़ेंगे। अब आपका कर्तव्य तो यह है कि केवल अन्ध विश्वास पर ही न बैठ कर तुरन्त ही अपना और अपने पूज्य पितरों का उद्धार करने में लगें। इस सम्बन्ध में वृद्ध पुरुषों से सहयोग की आशा करना फिजूल है। वृद्ध और बालक समान होते हैं और दोनों

को मीठे से प्रेम होता है। मीठे के प्रेम में मतवालों को न्याय अन्याय का ध्यान नहीं रह सकता। जब इनके समक्ष शास्त्रों के वाक्य बोले जाते हैं तब ये लोकापवाद के मस्तक में राज्य तिलक दे देते हैं और जब इन्हें कोई लोकोपवाद से लोकोपवाद की हानि बताने लगे तो ये धर्मशास्त्र की चोटी जा पकड़ते हैं। यदि कोई इन्हें लोकोपवाद और शास्त्रों का समत्व ही कर दिखावें तो फिर ये भले आदमी कलहनीति का आश्रय ले लेते हैं। अब आप ही सोचें विचारें कि इनकी पटकम्मटक नीति से कैसे और क्यों कर विजय प्राप्त की जा सकती है।

यद्यपि यह बड़ी टेढ़ी खीर है तथापि इस अन्याय पथ से बचने के लिये युवकों को भरसक आन्दोलन करना चाहिये और पूर्वोक्त वृद्धों के समक्ष यह समस्या रखनी आरम्भ कर देना चाहिये कि यदि यह जीमण ही सत्य मार्ग है तो फिर जीमने वालों के लिये भयानक पाप शास्त्रों में क्यों लिखा है? यदि पाप अवश्य ही भोगना पड़ता है तो फिर ये मृतक जीमण क्युं किये जाते है? तथा तत्सम्बन्धी अन्य पूछताछ भी चालू कर देना चाहिये। शनै शनै इन बूढ़े दादाओं के दिमाग में उपरोक्त बातें जमेंगी और वे ठीक रास्ते पर आ जावेंगे।

शङ्का—

अब पाठकों को यह शङ्का होना अनिवार्य है कि क्या ओम् के विचार से अन्त्येष्ठी क्रियायें फिजूल हैं तथा क्या इनको उठा देना चाहिये। इसका उत्तर यह है कि नहीं ओम् का विचार अंत्येष्ठी क्रिया उठाने का नहीं अपितु ओम् का विचार तो अंत्येष्ठी क्रियायें शास्त्रोक्त रीति से पूर्णतया सम्पन्न करने का है। अंत्येष्ठी का अर्थ अन्त की इष्ठी (यज्ञ) अन्त का सुख, अन्त का कल्याण अन्त का आनन्दादि होता है। अर्थात् जिस क्रिया से मृतकात्मा को अन्त का सुख मिले या "यज्ञोवैविष्णु" कि श्रुति के अनुसार मृतक आत्मा को विष्णु में मिला दें उसका ही नाम अंत्येष्ठी क्रिया है। वह इष्ठी यह है कि मरने वाले प्राणी को उसके मरण से प्रथम ही गीता, उपनिषद्, वेद, वेदान्त सुना कर उसे इहलौकिक झंझटों को भुला कर पारलौकिक "शीवोहं" कि स्थिति में होने के लिये भरसक सहायता करें। उसके समीप से सब तरह के इहलौकिक व्यवहार हटा दिये जावें। उसके पास में पारलौकिक वायु मण्डल खचाखच भर दिया जावे। मर जाने के पश्चात् उसकी यथाशक्ति से सुगन्धित पदार्थों में अग्नी संस्कार करें, तत्पश्चात् पूर्वोक्त शास्त्रों को मृतकात्मा के नाम

विद्वान ब्राह्मणों से द्वादसे तक पढ़ें पढ़ावें और जहां मृतकात्मा का आश्रम हो वहां पर दीपक, अगरबती, अग्नी, शुद्ध जलादि भी उत्तम तरह से रखें। दस दिन तक मृतक आत्मा के नाम एक पिण्ड नित्य सुगन्धित द्रव्यों के साथ देते रहें। एकादसा के दिन मृतकात्मा का नारायण बली कर्म करें जिसका अर्थ ही मृतकात्मा को नारायणार्पण करना होता है। महर्षि याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि जैसे अग्नी से छोटे २ पतंगे बन जाते हैं तैसे ईश्वर से मनुष्य बनता है। यह वार्ता भगवान गीता में भी कहते हैं कि ये सर्व जीव सनातन से मेरा ही अंश है अतः इन्हें मेरे ही में बली दे देना चाहिये। यही अर्थ यजुर्वेद के सपिण्डी वाले मन्त्र का है कि जिसके समान जो जीव है उसको उसमें ही मिला दो—इस मिलाने वाली क्रिया का नाम ही नारायण बली कहा जाता है। इसके पश्चात् द्वादसे को मृतकात्मा के नाम बारह विद्वान वेदज्ञ, वेद के तत्वों को दिखाने वाले ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन प्रदान करो। यह अंत्येष्ठी क्रिया का सच्चा सत.गुणी विष्णु स्वरूप यज्ञ होता है। इसका ही फल मृतकात्मा को प्रेतत्व से छुड़ा कर "आर्यमा" नामक पितर बनाना है, जो भगवान का ही एक नाम स्वरूप है अन्यथा "विधिहीन यज्ञस्य, सद्य करता विनश्यति" की कहावत सत्य होगी।

एक दूसरी शङ्का फिर हो जाती है कि जब धर्मशास्त्र श्राद्ध मात्र के अन्न खाने वालों को ही पूर्वोक्त फल प्रदान करता है तब ये बारह विद्वान और इनके पितर तो अवश्य ही अधोगति को जावेंगे। यदि ब्राह्मण भोजन ही उठा देवें तो मृतकात्मा का ही छुटकारा न होगा। इसका उत्तर देने का भार है तो धर्म शास्त्र के कर्ताओं ही पर परन्तु फिर भी कोई कुछ जब लिखने बैठता है तो उसके लिये शङ्का समाधान करना भी अनिवार्य होजाता है। प्रथम तो इसका उत्तर यह है कि श्राद्ध में विद्वान्, वेदज्ञ व तत्वज्ञानी ब्राह्मणों को ही जिमाने से ही मृतकत्मा का छुटकारा लिखा है; अन्य दूसरे मूर्ख, अज्ञानी निरक्षर भट्टाचार्यों को जिमाने से उद्धार के बदले पतन ही कहा है और साथ ही यह भी आता है कि आपत्तिकाल के विना जिमाने से ही पूर्वोक्त पाप लगते हैं-आपत्ति काल में पूर्वोक्त भोजन करने से विद्वानों को कोई पाप नहीं लगता है। इस पर विश्वामित्र आदि के अनेक उदाहरण दिये गये हैं जिनमें उनको सूनी (कुतिया) आदि के मांस खाने पर भी कोई दोष या पाप नहीं लग सका।

अब तो यह बात ठीक समझ में बैठ जानी चाहिये कि पूर्वोक्त बारह ब्राह्मण वे ही विद्वान ब्राह्मण हों जो किसी

कारण से आपद काल में पड़ गये हों। इनके जिमाने से छुटकारा होगा और विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा होगी तथा उनको पूर्वोक्त पाप भी नहीं लगेगा क्योंकि जिसको दण्ड विधाता ही दण्ड की क्षमा प्रदान कर देता है उसको फिर कोई कानून लागू नहीं हो सकता है। हमारे धर्मशास्त्र ने आपद ग्रस्त ब्राह्मणों को पूर्वोक्त सब पाप क्षमा किये हैं अतएव वे इस भोजन के अधिकारी कहे जा सकते हैं। इस तरह के ब्राह्मण भोजन से समाज एवं देश को भी अतिलाभ होता था एवं होगा। एक तो मृतकात्मा का कल्याण दूसरे विद्वान ब्राह्मणों का आपत्तिसे छुटकारा, तीसरी विद्वानों के सन्मान से विद्यावृद्धि भी होगी, अन्य भी कई लाभ हो सकते हैं। परन्तु ध्यान में रहे कहीं ये पूर्वोक्त ब्राह्मण भी इस भोजन को अपनी बापोती नहीं बनालें, अन्यथा विद्वानों का उत्थान भी रुक जावेगा और इनको भी पूर्वोक्त पाप आ पकड़ेगा और समाज में प्रतिग्रहियों की संख्या बढ़ने लगेगी। अतः इन विद्वानों को एवं समाज को पूर्णतया यह ध्यान होना चाहिये कि आपत्ति से मुक्त होते ही ब्राह्मण ऐसे भोजन को छोड़ दें और समाज को भी इसे उनसे छुड़ा देना चाहिये। इस तरह से यह भोजन भी पुण्यात्मक एवं विद्वानों को आपत्ति से मुक्त करके विद्यावर्धक व आपद ग्रस्त ब्राह्मण समाज का

उत्थापक हो जावेगा, अन्यथा विधिहीन यज्ञों से दाता यज्ञकर्ता व उसके पात्र दोनों ही शीघ्र नाश को प्राप्त होते हैं।

अब एक तीसरी शङ्का और हो जाती है कि आज कल जैसे ब्राह्मण धर्मशास्त्रों में कहे हैं वैसे बारह तो दूर रहे एक भी तो मिलना असम्भव है। प्रथम सत्य उत्तर तो इसका यही है कि फिर " पय पानं भुजंगानाम् केवलं विषवर्धनम् " अर्थात् यदि शास्त्रोक्त ब्राह्मण नहीं मिलते हैं तो फिर कुपात्रों को अन्न देकर अपना निजका, उन कुपात्रों का और साथ में पितरों का भी सर्वनाश क्यों करें? कुपात्रों को अन्न देने से एक तो पितरों का पतन होता ही है, दूसरे कुपात्रों की संख्या वृद्धि होती है। पितरों को पतन से रहित बनाने के लिये उनको जल से ही तृप्त करना धर्म सङ्गत प्रतीत होता है। धर्मशास्त्रों में ही कहा है कि यदि सतपात्र ब्राह्मण नहीं मिलें तो कुसा बटुक ही रख कर श्राद्ध करना श्रेयस्कर होता है। परन्तु इस सत्य सिधान्त को लोकोपवाद के गुलाम कब मानने लगे हैं? अतः इसके उत्तर में एक ऐसी युक्ति बताई जाती है जो सब के अनुकूल और सब को लाभ प्रद होगी। वह यह है कि विद्वानों के स्थान में आपत्ति ग्रस्त गरीब ब्राह्मणों

को ले लिया जावे तो गरीब ब्राह्मण समाज का उत्थान होगा और गरीबों के आशीर्वाद से हमारे प्रेतात्मा का छुटकारा अवश्यमेव हो जावेगा।

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि तुम लाखों मण घृत अग्नि में नहीं होम कर एक दो तोला इन गरीबों की जठराग्नि में क्यों नहीं होम देते जिसकी तृप्ति से विश्वात्मा भगवान कि तृप्ति हो उठेगी; जिसके प्रकाश से विश्व प्रकाशित होगा; जिसकी सुगन्धि से अनाथों के नाथ सुगन्धित हो उठेंगे। जितना कि दान आज इन अभीत यज्ञों में लगाया जाता है मेरी समझ में उसके चौथाई भाग को भी यदि गरीब आपत्ति ग्रस्त ब्राह्मण कुलोत्थान में लगा दिया जाय तो थोड़े ही वर्षों में भारत के ब्राह्मण समाज का उत्थान हो सकता है। क्योंकि इससे वेद विद्यालयों की स्थापना और उनका पूर्णतया प्रबन्ध हो सकता है। परन्तु यह तब ही हो सकता है जब दाता एवं ब्राह्मण समाज मिल कर निष्कपट धर्म बुद्धि से कार्य करें। इसका प्रबन्ध इतना ही बहुत है कि दाता तो यह प्रतिज्ञा करलें कि हम दान इस प्रथा से करेंगे और ब्राह्मण यह प्रतिज्ञा कर लें कि हम पूर्वोक्त अशुभ-धन जो हमारे पूर्वजों ने दीन दुःखियां के लिये बनाया है. जिसके खाने

से, लेने से हम और हमारे पूर्वज नरक में जाते है, कदापि नहीं खावेंगे।

जब हम धनी–मानी ब्राह्मण इस अन्न को आपद–ग्रस्तों का अन्न कह कर त्याग देंगे, तब हमारे दीनावस्था प्राप्त भाईयों में स्वाभिमान की जागृति शीघ्र ही होने लगेगी; क्योंकि वे भी इससे समझेंगे कि यह अन्न गरीबों का है और मुझे तब तक यह अवश्य खाना पड़ेगा जब तक मैं आपत्ति के चंगुल से मुक्त न हो जाऊँ। कितने ही तो इसे यह कह कर ही छोड़ देंगे कि क्युं जी ? हम गरीब कैसे हैं ? क्या कभी आपके घर उधार या भीख मांगने आये हैं ? वाह ! महानुभाव हम आपके भाई हैं। स्वजाति में कौन गरीब और कौन धनी हुआ करता है ? आपके पास दो पैसे अधिक हैं हमारे पास दो पैसे कम हैं, आप भी कमा कर खाते हैं, हम भी कमा कर खाते हैं; रखिये आपका भोजन, हम नहीं जीमेंगे। आपके यहां गरीब बन कर कौन जीमने आया है, क्या हम ऐसे हैं कि सदा यही टोह लगाये रहें कि कब मुर्दा मरे कब हम को न्यौता आवे इस प्रकार स्वाभिमान भावों से वे उत्साहित होकर गरीबी से छुटकारा पाने के लिये भरसक प्रयत्न करेंगे। क्या यह देश एवं समाज के अर्थ कुछ कम गौरव की बात है ?

इसके अतिरिक्त उपरोक्त आपत्ति ग्रस्त की श्रेणी में आप उन विधवाओं को ले सक्ते हो जो केवल इस पापी पेट के कारण अपने अमूल्य सतीत्व धर्म को असहाय होकर बेच देती हैं। यदि आप इन विधवा बहिनों की सहायता कर सकें तो फिर पूछना ही क्या है? उनके आन्तरिक आशीर्वाद से आपका समाज दिनों दिन वैभव सम्पन्न होता जायगा।

अतः अब आप स्वयं निष्पेक्ष होकर सोचिये कि इन दोनों प्रणालियों में कौन सी हितकर है, और कौनसी अहितकर? एक में तो आप अपने ही सगे सम्बन्धियों को, भोजनभट्ट ब्राह्मणों को व मुण्ड मुण्ड साधुओं को जिमाते हो और हजारों रुपया स्वाहा कर देते हो। दूसरों में आप उन क्षुधापीड़ित बान्धवों को, असहाय विधवाओं को, निर्धन विद्यार्थियों को तथा आपत ग्रस्त विद्वान ब्राह्मणों को उनकी क्षुधा शान्ति के अर्थ सहायता करते हो जिससे अनेकों के धर्म की सहायता होती है, अनेक विद्यार्थी विद्योपार्जन करने में समर्थ होते हैं, अनेक विद्वान संस्कृत विद्या की उन्नति में फलीभूत होते हैं और आपके समाज का धन व धर्म सदुपयोग में लग कर समाज का ही केवल हित साधन नहीं होता है बल्कि धर्म

शास्त्रानुसार आपका तथा आपके पितरों का दोनों का कल्याण सम्पादन होता है। इन सब के साथ आपके लोकोपवाद व धर्म शास्त्र दोनों ही की मर्यादा भी स्थित रहजाती है। इन सब बातो को सामने रख कर हम यह निर्णय आप ही पर छोड़ते हैं कि श्राद्ध-यज्ञ के लिए कौनसी प्रणाली तो धार्मिक व हितकर है और कौनसी अधार्मिक व अहित कर ?

'मृतक-भोजन' पर व्यवहारिक दृष्टिपात

अब तक तो ॐ ने आप लोगों को यह बतलाने की चेष्टा की है कि श्राद्ध की आधुनिक प्रणाली अधार्मिक है और इस सम्बन्ध में धर्म शास्त्र के प्रमाण भी दे दिये हैं। अब यदि धार्मिक दृष्टि को छोड़कर हम व्यवहारिक दृष्टि से भी देखें तो हमें यह प्रथा कितनी घृणित मालूम होती है। किसी के घर में से तो एक सुहृद के सदा के लिये चल बसने के कारण उनके हृदय से शोकाग्नि धाँय २ कर प्रज्वलित हो रही हो, और हम सीरा, लपसी, पूड़ी घृत खिचड़ी आदि छक कर जीमने की लगन लगाये रहें—यह व्यवहार कितना घृणा जनक है। जरा सोचने की बात है केवल इस रसना के चटोरपन की क्षणिक शान्ति के लिये हमनें कितनी ही विधवाओं के धर्म की पूर्ण आहूति दी,

कितने ही बालकों को विद्या से वञ्चित रखा, कितने ही असहाय मनुष्यों के जेवर व घर बिकवाये और कितनों ही को पूर्ण रूप से बर्बाद कर उनको घरका रखा न घाट का? क्या यह अत्याचार की चरम सीमा नहीं है? यदि सीरे से हमारा इतना घनिष्ट नाता न होता तो हिन्दू समाज का हजारों नहीं लाखों, लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों रुपया सन्मार्ग में खर्च होता और उससे हिन्दू समाज का हित साधन होता। कई जातियों में तो उनके पञ्च मृतक भोजन के सम्बन्ध में इतने अन्धविश्वासी व स्वार्थी हैं कि वे घर वाले या घरवाली की अनिच्छा होते हुए भी जबरदस्ती मृतक के पीछे भोजन सम्मेलन करवाते हैं यहां तक कि उनके पास न हो तो उनके घर जेवर गिरवे रखवाने में भी सहायता देते हैं और जाजम बिछा, धर अंगोछा खांदे पर ले, खुरपा हाथ में १०-१२ दिवस तक खूब आनन्दोत्सव मनाते हैं। जिस समाज के अगुओं की यह हालत हो वह समाज अवनति के गर्त में क्यों कर न गिरे? अब समय ने पल्टा खाया है, पंचों की मनमानी घरजानी का जमाना चला गया, उनके प्रपञ्च अब अधिक न चल सकेंगे और आशा की जाती है कि धीरे २ यह घृणित प्रथा जो हिन्दु समाज के मस्तिष्क पर कलंक का टीका है अवश्य मेव मिट जायगी।

मृतक-भोजन के संबन्ध में ॐ की विद्यार्थियों से दो बात।

प्यारे विद्यार्थियों, समाज के प्राण तुम हो। समाज की भावी उन्नति वा अवनति तुम पर निर्भर है। यदि सम्पूर्ण रूप से अपनी मानसिक, शारीरिक, व अध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर समाज व राष्ट्र के हित साधन में लगोगे तो तुम भी उस उन्नति की दौड़ में भाग ले सकोगे जो आज सब राष्ट्र व समाज ले रहे हैं, नहीं तो पहिले ही पिछड़ जावोगे और विश्व के इतिहास में तुम्हारा कहीं उल्लेख होने में भी शङ्का ही है। अब इन शक्तियों को विकसित करने के हेतु जो साधन हैं वे यदि उस सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ने सम्यक रूप से तुम्हारे पास जुटा रखे हों तो आज से ही तुम इन तीनों शक्तियों से इस विनाशक मृतक-भोजन को तिलाञ्जलि दे दो। ॐ तुम्हें सत्य कहता है कि इस मृतक--भोजन के प्रताप से तुम्हारी बुद्धि विशुद्ध कदापि नहीं रह सक्ती, जिस घृत व पकवान से तुम अपनी नाड़ियों को मजबूत करना चाहते हो व यदि यह पाप मय भोजन है तो स्मरण रखो तुम्हारी शक्तियें दृढ होने के स्थान कुण्ठित होंगी, तुम्हारी धारणा शक्ति बिगड़ जायगी और तुम्हारा तेज व ओज नष्ट

हो जावेंगे। अतः यदि तुम अपना भला चाहते हो तो इस मृतक-भोजन के प्रेम को सदा के लिये त्याग दो। यदि दैव वशात् तुम्हारे पास अपनी क्षुधा तक को शान्त करने के लिये साधन न हों तो तुम बिना किसी संकोच के विद्योपार्जन के समय तक केवल यह मृतक भोजन ही नहीं परन्तु अपने समाज के किसी भी गृहस्थी के यहां, जिस समय आवश्यक हो क्षुधा शान्ति के लिये जाने का अधिकार रखते हो और गृहस्थियों का यह धर्म है कि वे ऐसे विद्यार्थियों की सहायता करें। जो गृहस्थी केवल नाम्बरी के लिये सैकड़ों हजारों रुपया श्राद्ध, द्वादसे, संवत्सरी आदि में भिन्न २ पकवान बनाकर एक ही दिन में स्वाहा करदेते हैं वे यदि केवल एक ही असमर्थ विद्यार्थी को सहायता दे सके तो उसका व उसके पितरों का कितना कल्याण हो! आशा है विद्यार्थी गण मेरे इस उपदेश से अवश्य लाभ उठावेंगे और गृहस्थी भी अपने कर्तव्य को सोचेंगे।

मारवाड़ में मृतक भोजन-'रस'

जिस विषय को ओम् यहां दे रहा है वह सर्वदेशिक नहीं बल्कि मारवाड़ की ही सम्पति है। वह विषय है 'रस'

किसी की मृत्यु पर १२ दिवस तक नित्य नये पकवान बनाना और सगे सम्बन्धियों व मित्र मण्डली को जिमाना इसे अमुक व्यक्ति के पीछे अमुक ने 'रस' किये—ऐसा कहते हैं।

यह प्रथा इतनी घृणित और असभ्यता पूर्ण है कि जिसकी घृणाजनक अवस्था और असभ्यता को एक मूर्ख से भी मूर्ख मनुष्य समझ सकता है। मालूम होता है इस का नाम करण करने वाले पुरुष के अन्दर बुद्धि और मास्तिष्क शक्ति का एक भी परमाणु नहीं था, अन्यथा वह इस घृणित भोजन को 'रस' कैसे कह सकता था ? भला जिसके घर में पुरुष मर गया हो, जो घर शोक सागर में डूब रहा हो जिसकी खुद की क्षुधा तृषा भी शोक की दावानल में भस्म होगई हो उसके घरमें ऐसे शोकरस से प्लावित भोजन को 'रस' के नाम से पुकारना कितने दर्जे की मूर्खता है ? उस पर भी तुर्रा यह कि मृतक के १२ दिनों में इन मुर्दों के रस को जीम जिम्मकड़ पुरातन व धार्मिक प्रथा कह कर बड़े मजे से भगवान का भोग समझ कर खाते हैं। भला इससे अधिक अधः पतन की और शर्म की क्या बात हो सकती है ?

अब देखना यह है कि यह घृणित प्रथा चली कैसे? इसका उत्तर ओम् की समझ में वही ठीक जँचता है जो कि स्थानीय बहुत से सुधारक और वृद्ध प्रायः दिया करते हैं। वे कहते हैं कि जिस समय में मारवाड़ का संगठन नागरिकता के रूप में नहीं हुआ था तब वे छोटी छोटी ढाणियां में रहा करते थे। किसी की मृत्यु हो जाने पर जब जो सज्जन दूसरी ढाणी से आश्वासन देने (मुकाण देने) आते थे उन्हें खीचड़ा खिलाना और खाना ही पड़ता था। उस समय यह अनिवार्य ही था। बस यह अतिथि सत्कार ही इस पाप का बीज रूप हो गया है। उसी बीज का आज यह 'रस' रूपी विषवृक्ष मौजूद है। अब न तो वह ढाणियां का रहना है और न इन 'रसों' की, कि जिन्होंने साधारण खीचड़े की जगह नाना प्रकार के व्यञ्जनों का रूप धारण कर लिया है, जरूरत है। मारवाड़ी समाज को जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी इस भयङ्कर पतनकारी प्रथा को उठाना चाहिये।

ॐ का मारवाड़ी समाज के नवयुवकों से विशेष रूप से अनुरोध है कि वे यदि इस पाप प्रथा को बन्द कराने के लिये सत्याग्रह न करेंगे तो यह कालिमा उन्हें सभ्य समाज के सामने मुँह दिखलाने योग्य न रखेगी।

अन्य के घर भोजन से प्रायश्चित—

ॐ ने जहां तक हो सका वहां तक यह प्रमाणित कर दिखाया है कि मृतक भोजन कहां तक धार्मिक है और कहां तक अधार्मिक। अब ऐसे भोजन करने से जो पाप होते हैं उनके लिये महान कठिन प्रायश्चित का भी उल्लेख धार्मिक पुस्तकों में आया है। उनमें किसी अन्य के घर साधारण रूप से भोजन करने पर भी प्राणायाम, गायत्री जाप, गायत्री मन्त्र से अभिमंत्रित जल का पान, आदि प्रायश्चितों का उल्लेख है। भला जिस समाज के धार्मिक शासन में अन्य के घर साधारण रूप से भोजन करने पर भी प्रायश्चित का भागी होना पड़े तब आप स्वयं सोच सक्ते हैं कि दूसरे के घर भोजन करना कितना अनर्थ कारी है और उसी सिद्धान्त पर श्राद्ध, द्वादशा, संवत्सरी, 'रस' आदि भोजन तो कितने निकृष्ट व अनर्थकारी हैं यह आप स्वयं निश्चय कर सक्ते हैं। इन भोजनों की भयङ्करता को देख कर ही, ऋषि महर्षियों ने ऐसा भोजन कर लेने पर महान् कठिन प्रायश्चित—चंद्रायण व्रत, पाशु पतादि निर्धारित किये हैं। भला एक समय भी ऐसा भोजन कर लेने पर जब ऐसे २ प्रायश्चित का भागी होना पड़े तब तो रोज छक कर जीमने वालों की दशा आप स्वयं ही विचार लीजिये। ॐ की राय तो यही है कि न तो पाप पंथ में जाना और न प्रायश्चित का भागी होना।

श्राद्ध की धार्मिकता या अधार्मिकता के संबंध में क्या ऋषियों का मत भेद है ?

प्रायः लोग कह दिया करते हैं कि यह किसी एक ऋषि का मत होगा कि श्राद्ध का अन्न खाना पाप है, परन्तु हम दावे के साथ कह सकते हैं कि श्राद्ध का अन्न खाने का निषेध करने में सब ऋषियों का एक ही मत है। सब मानते हैं कि जन्म और मृत्यु का अन्न त्याज्य है; हां, यदि कुछ भी भेद है तो केवल पाप की भयङ्करता पर ही। यदि कोई भी विद्वान् हमको मृतक व जन्म के अन्न को शुद्ध बताकर प्रमाणित करेगा तो हम उसके कृतज्ञ होंगे और तुरन्त ही अपने इस निबन्ध को वापिस लेकर रद्दी की टोकरी में डाल देंगे और जनता से क्षमा प्रार्थी होंगे।

श्राद्ध की आधुनिक प्रणाली को हटाने के लिये आन्दोलन के साधन

पाठकगण उपरोक्त विवेचना को पढ़ कर अवश्यमेव यह निष्कर्ष निकालेंगे कि श्राद्ध की आधुनिक प्रणाली अहित कर, अधार्मिक व समाज का अधःपतन करने वाली है। यदि ऐसा ही है तो इस हानिकारक प्रथा को दूर करने के लिये आन्दोलन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। हां यह बात जरूर है कि उन्हें यह बात ध्यान

में रखनी चाहिये कि मर्यादा युक्त आन्दोलन ही सुधार है और अमर्यादायुक्त आन्दोलन बिगाड़ है। अब हम अपने सुधार प्रिय पाठकों के लिये आन्दोलन के साधन बता कर उस विश्वात्मा ॐ से प्रार्थना करते हैं कि कृपा कर नवयुवकों के हृदय में इतना साहस दे कि वे हिन्दू समाज की इस कालिमा को सदा के लिये धो सकें।

(१) विद्वानों के सामने पूर्व और उत्तर पक्ष रख कर यथार्थ निर्णय किया जावे।

(२) उस निर्णय को शन्ति पूर्वक वृद्धों के हृदय में विश्वास और श्रद्धा से बिठाया जाय।

(३) अपनी सभा के निर्णय को पत्र द्वारा भेज विद्वानों की सम्मतियें मांगी जावें।

(४) पत्रों में इस विषय की पूछताछ चालू रखी जावे।

(५) हर एक नवयुवक इस विषय पर अपना विचार पत्र द्वारा जनता के समक्ष पहुंचाने का प्रयत्न करें।

(६) जहां तक हो सके धर्मशास्त्र और लोकोपवाद को मिलाया जावे।

(७) इस सम्बन्ध में समय २ पर छोटी २ पुस्तकें बुले-टीन, निबन्धादि प्रकाशित कर वितरण किये जावें।

उपसंहार

(तर्ज—घण केसरिया दुपटे में झालो देवे छुन्दगारी)

यांने मोसर रो माल उड़ातां सूग न आवे ॥ टेर ॥

निसरमा गठकावे आवे नहीं जरा लाज ।
जीवता कहावे चावे मरियोड़ों रो माल ॥
जाल फैलाय गीध ज्यूँ खावे ॥ सू० ॥ १ ॥

डोकरो बीमार होवे माला एड़ी फेरे ।
कितरो बेगो मरे न्योंतो आवे म्हारे घेरे ॥
तेड़ेरे खातर आंखां फाड़े ॥ सू० ॥ २ ॥

डोकरो मरियो है सुणियो घणा हुआ राजी ।
चिट्ठियां फाड़णरी बातां होय रही ताजी ॥
पाजी जीमणने कोड़े जावे ॥ सू० ॥ ३ ॥

बारियो करवारे सारू घरमें नहीं टका ।
टापरो बेचाय गेणा जीमण करे पक्का ॥
इण चटोकड़ों ने लाडू भावे ॥ सू० ॥ ४ ॥

रोटी मांटी बैर रोवे टाबरिया बिलखावे ।
माल खाय लोग न्हाटा दया नहीं लावे ॥
मूँडा पाछा नहीं आय दिखावे ॥ सू० ॥ ५ ॥

हाय थूरे ! हाय थूरे !! एड़ो कूण खावे ।
मौसररो माल काग कूतरों ने भावे ॥
साची साची "श्रीनाथ" सुणावे ॥ सू० ॥६॥

(राग —मेरे मौला बुलालो मदीने मुझे)

मनभू मौसररो जीमण करेला नहीं ॥
मूरख जीमणने खांव लवेला सही ॥ टेर ॥
जीमणो ओ मुगलो मुरदारे लारे माल है।
ज्यूं लाश खावे कूतरा आ ठीक वेड़ी चाल है ॥
सज्जन लोगांरें जोग ओ काम नहीं—स० ॥१॥
लाडुआंरे लोभ में जो लोग आयोड़ा हुआ।
रोवतांरे बारणेपे माल खायोड़ा हुआ।
जठे खांपणारा चूक्या है दाम नहीं-स० ॥ २ ॥
डाढ में कीड़ो कुले क्यूँ पैंच देवे नाय जी।
खांड माले हाथ सूं मुड़ तो न आवे दाय जी।
सीरो भाखे है लापसीसे नाम नहीं-स० ॥ ३ ॥
मरजाय धणरो आदमी खूणामें रोवे रांड है।
विकजाय गेणो ठापरो मुलवाय घी अरु खांड है।
जरे रालवेके लोटणरो नाम नहीं—स० ॥ ४ ॥
हाय थूरे! हाय थूरे!! कूण जीमें माल ओ।
मींयाळियां या गीध है जो माल मुरदा खाय सो।
'सीरिनाथ' न खावे खिलावे नहीं—स० ॥ ५ ॥

(तर्ज—गोपीचन्द लड़का पाड्ल परलेरे कंचन महल में)

मत लाडू खावोरे—लाडू सूं लोही टपके टपां टपां—टेर।
विधवा रोवे खूंणे बैठी टाबरिया बिलखावे।
बारे लागी पंगत मोटी कीकर जीम्यो जावे रे—स० १

"लाड़ लावो" 'लाड़ लावो" येंये छावें लोग ।
निसरमोंने लाज न आवे नहीं खावणो जोग रे—म० २
पञ्च मिठाई बणी जुगत सूँ लाडू घेवर ठोर ।
और जलेबी चकियें पुरसत मच्यो घणों है शोर रे—म०३
राम खीचड़ी बणी चरपरी और कचोरी ताजी ।
जो मिलजावे तवापुड़ी तो होवे पञ्च राजी रे—म० ४
चक्कर वड़ोंरो बण्यो रायतो अमचूरोंरो झोल ।
लेय सबड़का खूब सड़ासड़ ऊँची बांयां खोल रे—म० ५
पापड़ और पकोड़ी चाई आई एक डकार ।
उल्टी होकर पाछो निकलियो पड़ी कुदरती मार रे—म०६
घर भी बेच्यो काम सरयो नहीं गिरवी मेल्या गेणा ।
काठ खांपणरा दाम हाल है हाटां मांहे देणा रे—म० ७
पञ्च लोग परवारचा जिणसूँ होवे ऐड़ा काम ।
टाबर छोरू किया मांगता पूगे म्हांने राम रे—म० ८
समभावे 'श्रीनाथ' सबोंने छोडो मुर्दा माल ।
जो खावे ओ माल तीणोंरो होवे भूँडों हाल रे—म०९

(सुधार सङ्गीत वा शुभ गीत से उद्धृत)

तर्ज़ जिगर के टुकड़े ये हैं हमारे जो बनके आसू निकल रहे हैं

है ब्राह्मणों का विद्या भोजन, मक्खी मसालों का नित्य चाना
कहो ! कहां की है सभ्यता यह, मुर्दों का लूट खाना ॥टे

मरते हैं जब कि पिता या माता, करते रस न्यात बेच घर जर
या बारिया करके भूख मरते, इस ब्रह्मघात को है भोज माना १
कसाई का अन्न हम न खाते, वो बेचता मांस यूं बताते।
पर हाय! मुर्दे पे टूट जाते, ये गृद्ध कौओं सा कर्म ठाना ।२॥
समझते हैं आप की कसाई, मांस बदले में अन्न पाता।
तो क्या बारिया रसवो मृत्यु भोजन, नहीं हैं मुर्देके बदलेपाना ३
छोड़ो इस घात की प्रथा को, राह ये ब्रह्म ऋषि बताते।
दान दो पात्र विद्यालय में, जो सच्चा है भोजब्रह्म कराना॥४॥
द्विजों का विद्याही रूप, धन है, गुरु है, यश है, वो भोग सुख है
बंधु-जन है वो देव, भूषण, इसीसे इसमें सब सुख है जाना॥५॥
विद्या ही राज्य में पुजाती, विद्या ही मुक्ति को दिलाती।
सर्व सिद्धि भी इससे आती, इस विना नर पशू समाना ६॥
न दान विद्या से बढ़के कोई, देखलो श्रुतियें शास्त्र सोई।
ब्रह्मदान है लो यह जोई, है भोज ये पुष्टिकर प्रमाना ॥७॥
मसाले जो कुछ हैं आप खाते, पच वो दो घंटे में हैं जाते,
पर विद्या रूपी मसाला खाकर, हमेस आनन्दस्वरूप पाना

— महात्मा ॐ —

मुद्रकः—कुँवर सरदारमल थांनवी,
श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुलेलाव की घाटी, जोधपुर.